International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 6, Issue 01, January 2019
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

उत्तररामचरितम् में व र्णत करुण रस

डॉ विनोद कुमार पांडेय , एसोसिएट प्रोफेसर ,
संस्कृत विभाग , के महाविद्यालय .के .जी ., मुरादाबाद

उत्तररामचरितम् महाक व भवभूति का प्र सद्ध संस्कृत नाटक है, जिसके सात अंकों में राम के उत्तर जीवन की कथा है।

भवभूति एक सफल नाटककार हैं। उत्तररामचरितम् में उन्होने ऐसे नायक से संबं धत इतिवृत्त का चयन कया है जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इस कथानक का आकर्षण भारत के साथ साथ वदेशी जनमानस में भी सदा से रहा है और रहेगा। अपनी लेखनी चातुर्य से क व ने राम के पत्नी परित्याग रूपी चरित्र के दोष को सदा के लये दूर करदिया। साथ ही सीता को वनवास देने वाले राम का रुदन दिखाकर क व ने सीता के अपमानित तथा दुःख भरे ह्रदय को बहुत शान्त कया हैं। साहित्य शास्त्र में जहाँ नाटकों में शृंगार अथवा वीर रस की प्रधानता का वधान है वही भवभूति ने उसके वपरीत करुण रस प्रधान नाटक लखकर नाट्यजगत में एक अपूर्व क्रान्ति ला दी। भवभूति तो यहाँ तक कहते हैं क करुण ही एकमात्र रस है। वही करुण नि मत्त भेद से अन्य रूपों में व्यक्त हुआ है। ववाह से पूर्व नायक नायिका का शृंगार वर्णन तो प्रायः सभी क वयों ने सफलता के साथ कया है परन्तु भवभूति ने दाम्पत्य प्रेम का जैसा उज्ज्वल एवं वशद चत्र खींचा है वैसा अन्यत्र दुलर्भ है।

सात अंकों में निबद्ध उत्तररामचरितम भवभूति की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति है। इसमें रामराज्य मषेक के पश्चात् जीवन का लोकोत्तर चरित व र्णत है जो महावीरचरित का ही उत्तर भाग माना जाता है।। संस्कृत नाट्यसाहित्य में मर्यादापुरषोत्तम श्री रामचन्द्र के पावन चरित्र से सम्बद्ध अनेक नाटक है कन्तु उनमें भवभूति का उत्तरराम चरितम् अपना एक अलग ही वै शष्ट्य रखता है। काव्य शास्त्र में जहाँ

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

नाटकों में श्रृंगार अथवा वीर रस की प्रधानता का वधान है वहीं भवभूति ने उसके वपरीत करुण रस प्रधान नाटक रचकर नाट्यजगत में एक अपूर्व क्रान्तिला दी है। उत्तररामचरितम् में प्रेम का जैसा शुद्ध रूप देखने को मलता है वैसा अन्य क वयों की कृत्तियों में दुर्लभ है। क व ने इस नाटक के माध्यम से राजा का वह आदर्श रूप प्रस्तुत कया है जो स्वार्थ और त्याग की मूर्ति है तथा प्रजारंजन ही जिसका प्रधान धर्म है। प्रजा सुख के लये प्राण प्रया पत्नी का भी त्याग करने में जिसे कोई हिचक नहीं है। इस नाटक में प्रकृति के कोमल तथा मधुर रूप के वर्णन की अपेक्षा उसके गम्भीर तथा वकट रूप का अ धक वर्णन हुआ है जो अद् वतीय एवं श्लाघनीय हैं। वास्तव में यह नाटक अन्य नाटकों की तुलना में नराला ही है। इसी कारण संस्कृत नाट्य जगत में इसका वशेष स्थान है। सार रूप में यही कहा जा सकता है क वश्वास की महिमा में , प्रेम की प वत्रता में , भावनाओं की तरंगक्रीड़ा में , भाषा के गम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में उत्तररामचरितम् श्रेष्ठ एवं अतुलनीय नाटक है।

उत्तररामचरितम् महाक व भवभूति का प्र सद्ध संस्कृत नाटक है , जिसके सात अंकों में राम के उत्तर जीवन की कथा है। भवभूति तो यहाँ तक कहते हैं क करुण ही एकमात्र रस है। वही ... करुण नि मत्त भेद से अन्य रूपों में व्यक्त हुआ है।

महाक व भवभूतिप्रणीतं उत्तररामचरित में अङ्गी रस "करुण" है अथवा करुण - वप्रलम्भ? इस वषय में वद्धवानों का मत है क "उत्तररामचरित" में करुण वप्रलम्भ अङ्गी रस है। उनके कथन का आशय है "एको रसकरुण एव :"[1] इत्यादि श्लोक में "करुण" शब्द को करुण वप्रलम्भ परक मानना चाहिए,क्यों क करुण रस का स्थायीभाव शोक है । उसमें पुर्न मलन क आशा नहीं रहती , कन्तु करुण वप्रलम्भ में पुर्न मलन की आशा बनी रहती है।

दूसरी तरफ अन्य वद्धानों का मत है क उत्तररामचरित में "करुण" अङ्गी रस है। व्याख्याकार वीरराघव इसी वचार से सहमत है एवं च रसान्तरापेक्षया प्रकृतित्वमेव-करुणस्य इति ।घनश्याम भी नाटक में श्रृङ्गार और वीर रस के अङ्गी रस के

अङ्गीत्व को प्रायिक मानते हुएकरुण भी नाटक में अङ्गी रस हो सकता है,अत उत्तररामचरित करुणरस प्रधान होते हुए भी नाटक है:-ऐसा कहते है।यह करुण करुण वप्रलम्भ से भन्न है।करुण वप्रलम्भ श्रृङ्गार का एक भेद है , जिसमें रति स्थायीभाव होता है , कन्तु करुण एक स्वतन्त्र रस है ,जिसमें शोक स्थायीभाव रहता है।उत्तररामचरित में वभाव ,अनुभाव,सात्त्विक और व्य भचारी भावों से अ भव्यत्त्क होकर शोक ही स्थायिभाव है,जो आस्वाद दशा में करुण रस में परिणत हो जाता है।

"उत्तररामचरित"करुणरस क व ने अपने निम्न ल खत श्लोक से इसी बात की-प्रधान है--ओर संकेत कया है

एको रसकरुण : एव नि मत्तभेदाभ्दिन्नपृथक्पृथ गवाश्रयते ववर्तान्।:

आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारानम्भो यथा स ललमेव तु तत्समग्रम्॥

जैसा क करुण के वषय में आचार्यो कअ मत है क राम को सीता समागम की-बिल्कुल आशा नहीं रह गयी है। वे समझते है क सीता नहीं रह गयी है,उसे मरे बारह वर्ष हो गये ,अब उसका नाम भी रहा।]2] रामायण में सीता के निधन में कथा का अवसान होता है। चूं क नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की कथा का अवसान सुखद होना चाहिए ,अत इस नियम के निर्वाह के लए तथा राम जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ और : खद अवसान उ चत:धर्म प्रय व्यक्त्ति के लए दु नहीं । इस लए भी क व ने कथावस्तु में परिवर्तन कर राम सीता के मलन में कथा का अवसान कया है-,जिसका सारा श्रेय गङ्गा और पृ थवी जैसी देवता,वाल्मी क जैसे मह र्ष,व सष्ठ-पत्नी अरुन्धती जैसी सती-शरोम ण को है।

इस वषय में माननीय डों वद्यानिवास मश्र का कथन भी ध्.यान दिये जाने योग्य है-

करुणरस का स्थायिभाव शोक,इष्टनाश से उत्त्पन्न हुआ होता है।यह इष्ट,व्यक्त्ति,धारणा,धर्म आदि कुछ भी हो सकता है।पश्चिमी दृष्टि से ट्रेजेडी का मूल होता है आशाभंग ।उस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है क राम के मन में-यह आशा थी क सीता का परित्याग करके हम लोक को प्रसन्न करने के लए त्याग

कया गया ,उसने राजा के दु ख ही नहीं समझा: ख को दु:,यही ट्रेजेडी का मूल है।यह ट्रेजेडी सीता के मलने से भी दूर नहीं होती।

उत्तररामचरितम में करुणरस के प्रधान आचार्य भवभूति -

रसों में पहला स्थान कसे दिया जाय ,इस वषय में आलंकारिको में एकमत नहीं है। नाट्याचार्य भरत मुनि ने आठ रसों में सर्वप्रथम "श्रृङ्गार" को ही स्थान दिया है। इस क प्राथ मकता के बारे में अ भनव भारती में बताया है-अ भनव-गुप्ताचार्य ने अपनी- क रति या काम न केवल मानव जाति में,बल्कि सभी जातियों में मुख्यता से पाया जाता है तथा सबको उसके प्रति लगाव होता है,इस लए सबसे पहिले श्रृङ्गार को स्थान दिया है[3] भोजदेव [वीं१२]ने भी श्रृङ्गार को ही सब रसों का सरताज माना है। यहा स्मरण रखें क अ भनव भारती में- गुप्ताचार्य ने अपनी अ भनव-"शान्त" को ही मुख्य माना है |

महाक व का लदास ने भी करुणोत्पादक कौतूहल खूब ही दिखलाया है अज वलाप तथा रति वलाप के द्वारा ।परन्तु भवभूति का वर्णन अलौ लक है ,चमत्कारी है।मर्यादापुरुषोत्तम राम का रोदन यहा बे मशाल है ,बेनजीर है।इसी करुण वर्णन को लक्ष्यकरके गोवर्धनाचार्य ने अपनी राय इस रुप में दि है-

भवभूतेसम्बन्धात् भूधरभूरेव भारती भाति । :

एतत्क्रृतकारुण्ये कमन्यथा रोदिति ग्राथा ॥

जनकनन्दनी सीता के लए राम का वलाप दे खये -

हा हा दे व:स्फुटति ह्रदयं ध्वंसते देहबन्ध !

शून्यं मन्ये जगद वरलज्वालमन्तर्ज्वला म ।

सीदन्नन्धे तम स वधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

वष्वङ्मोह]करो म॥:स्थगयति कथं मन्दभाग्य :**4]**

इस प्रकार भवभूति जी करुण रस के प्रतिपादन मे माहिर है तथा उनका करुणरस तलस्पर्शी एवं अगाध गम्भीर है । उन्ही के मन्तव्य में वह उस पुटपाट की (करुणरस) भांति है जो उपर से तो पांह लगे होने से एकदम शान्त है, परन्तु भीतर भीतर घनी--: गहरी वेदना से तडपता रहता है । जैसे

अनि भन्नो गभीरत्वात् अन्तर्गुढघनव्यथ। :

पुटपाकप्रतीकशो रामस्य करुणो रस॥ :

करुणरस निरपेक्ष होने पर भी मर्यादा में रहता है ,ले कन अपनी तेजी के कारण वह अपने पात्र को बारबार मुच्छ्रित करता रहता है । इस दशा में आचार्य भवभुति काफ़ी सजग रहते है क ,शोक की हालत में खूब अछोघार होके रो लेने से मन हलका होता है जैसे बढे हुये पानी के निकाल देने पर तालाब में ठहराव हो जाता है -:

पुरोत्पीडे तडाकस्य परीवाहप्रति क्रया :

इस प्रकार यह नाटक उपर से देखने में तो सुखान्त है , कन्तु भीतर से आदि से अन्त तक करुण बोध से आर्द्र है ।उपर से देखने पर तो कथा का अवसान राम और सीता के मलन में हे , कन्तु वस्तुत मलन होता नही :, क्यों क सीता और राम दोनो टूट चुके है । लोगो को प्रता डत करने के लये ही मलन होता है । दैवी शक्तियों के सहयोग से लोगो की कुबु द्ध का मार्जन तो हो जाता है , कन्तु राम और सीता को अपने दु ख की समाप्ति पर वश्वास नही है ।राम के मन में होता है क सब कुछ: घटित हो रहा है पर मुझे वश्वास नही हो रहा है और सीता के मन में यह शल्य है ख दूर करने की कला: क क्या आर्यपुत्र को मेरा दुअभी भी याद है । दोनो के द्वारा केवल लोकमङ्गल और लोकरञ्जन के लये कया गया यह करुण ब लदान दोनो के हृदय में स्थायी वेदना के रूप में की लत हो गया है ।

यथेच्छाभोग्यं वो वन मदमयं मे सुदिवस:

सतां सद्भिकथम प हि पुण्येन भवति । :सङ्ग :

तरुच्छाया तोयं यद प तपसां योग्यमशनं

फ़लं वा मूलं वा तद प न परघीन मह व॥ :

अर्थात् यह वन आपकी इच्छानुसार उपभोग योग्य है। यह मेरा शुभ दिन है ,क्यो क सज्जनों का सज्जनों के साथ सम्पर्क कसी प्रकार पुण्य से होता है । वृक्षो की छाया जल तथा जो कुछ तपस्या के योग्य भोजन फ़ल अथवा मूल वह सब-यहा तुम्हारे लये पराधीन नही है ऐसा बताया गया है ।

इस प्रकार महाक व भवभूति वर चत उत्तररामचरितम में रसास्वाद कया है तथा इसका प्रधान रस करुण रस बताया गया है यू तो करुण रस का आरम्भ इस नाटक में प्रारम्भ से ही दिखलाई देता है कन्तु तृतीय अंक में वह अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंचा हुआ प्रतीत है । वहा राम का करुण क्रन्दन ,दीर्घोच्छवास,परिवेदन और मोहागम सीता के हृदय में ही नही ,अ पतु सामाजिकों के भी अन्त करण में राम के प्रति: स्वाभा वक सहानुभूति उत्पन्न कर देते है ।उक्त भाव करुण रस के अ भनय में अत्यन्त उपयोगी सद्ध हुए है]**5]**

का लदास प्रकृति और मानव सौंदर्य–सूक्ष्म और स्थूल दोनों-के अप्रतिम क व (संस्कृत में नाटककार भी क व है) के रूप में वश्व-प्र सद्ध हैं , जब क भवभूति (आठवीं शताब्दी) को संस्कृत के बाहर लोग कम ही जानते हैं. जब संस्कृत को ही परि ध से बाहर ठेलने का उपक्रम चल रहा हो , संस्कृत साहित्य की नाट्य वधा को भवभूति के व शष्ट योगदान को सँजोना बहुत ज़रूरी है. का लदास ने तीन नाटकों के अतिरिक्त दो-दो प्र सद्ध महाकाव्य और लघु काव्य भी लखे , जिनसे उनकी काव्य-प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का पूरा अवसर मला ; भवभूति ने केवल तीन नाटक लखे , ले कन

उनमें से उत्तररामचरितम् के बारे में कहा गया –उत्तरे रामचरिते भवभूति र्व शष्यते (उत्तररामचरित में भवभूति का लदास से व शष्ट हो गए हैं).

साहित्य-शास्त्र के नौ रसों में करुण रस एक है. भवभूति ने उत्तररामचरितम् में करण रस को अपूर्व प्रतिष्ठा दिलाकर उसे सभी रसों का मूल स्रोत बना दिया : "एको रस: करुण एव नि मत्तभेदाद् भिन्न: पृथक पृथ गव श्रयते ववर्तान्।
आवर्तबुद्बुद्तरङ्गमयान्वि कारान् अम्भो यथा स ललमेव तु तत्समस्तम्॥ "
(उत्तररामचरितम्, **3:47) [** रस तो एक ही है –करुण, जो भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से पृथक्-पृथक् परिणामों (रसों) का आश्रय लेता है. जैसे वही जल भँवर , बुलबुला और लहर जैसे अनेक रूपों को प्राप्त होकर भी रहता जल ही है.] और जो उन्होंने कहा अपनी कृति में उसे कर दिखाया. सीता-निर्वासन की पीड़ा को राम के आत्म-निर्वासन की गहनतर पीड़ा में अंतरित कर उनके राजधर्म और मनुष्य-धर्म के बीच के तीक्ष्ण अंतर्द्वंद्व को जिस सूक्ष्मता और सहृदयता से उन्होंने रूपायित कया है , वह आदि क व वाल्मी क द्वारा लगाए गए कलंक को काफ़ी हद तक धो देता है. और इस प्र क्रया में वष्णु / ब्रह्म के अवतार मथकीय राम को भवभूति ने साधारण मनुष्य के धरातल पर लाकर उन्हें ऋजु, सुलभ और आत्मीय ही नहीं बनाया, जीवन की शास्वत वडंबना और अस्तित्व की गुत्थी से अंत तक लड़नेवाला एक ऐसा जुझारु व्यक्तित्व भी दिया, जिससे दर्शक / पाठक कसी अवतार की अपेक्षा अ धक तादात्म्य स्था पत कर सकता है. बीच में का लदास (रघुवंश) और भवभूति की क ड़याँ न होतीं तो शायद तुलसी का राम को सीताराम बना देना अत्युक्ति लगता.

भवभूति एक ही जगह चूके हैं. अपने सहज मार्ग से हटते हुए , शम्बूक को लोकोत्तर गरिमा प्रदान कर इस प्रसंग को अनपे क्षत चमत्कार का पुट देने के बावजूद , वाल्मीकीय रामायण के इस कीचड़ से अपने को निकाल नहीं पाये और यह काम तुलसी के लए छोड़ गये.

उत्तरामचरितम् का कथ्य लया तो गया है वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड से – राम द्वारा जनापवाद की सूचना के कारण सीता के निर्वासन से लेकर मुन र्मलन तक (वाल्मी क के वपरीत भवभूति की सीता अपनी जन्मदात्री पृथ्वी में नहीं समातीं , 'जनमत-संग्रह' के बाद लव-कुश सहित राम द्वारा अपना ली जाती हैं -मनुष्य राम की उत्कट अ भलाषा के बावजूद राजा राम की शर्त पूरी करने के बाद ही). पर इस मूल

कथा-सूत्र के अलावा सारे प्रसंग भवभूति की अपनी उद्भावना हैं , जो नाट्य तत्व को सघन करने के साथ-साथ रचना को वशुद्ध मानवीय धरातल पर अ धष्ठित करने में सहायक होते हैं. मानवीय धरातल से एक और अर्थ निकलता है –यथार्थवादी दृष्टि. कुछ नाटकीय प्रसंगों को छोड़ दिया जाए तो यह दृष्टि भवभूति में आद्यंत अनुस्यूत है. मानव-व्यापार के यथार्थपरक कथा-सूत्र के अलावा एक-एक दृश्य के संयोजन में भी इस दृष्टि की झलक मल जाएगी. तो यथार्थवादी दृष्टि कोई इतनी आधुनिक या नई नहीं है–ले कन आज कौन 'यथार्थवादी' समीक्षक भवभूति को पढ़ने की जहमत उठाएगा ? और हम नहीं पढ़ेंगे तो कोई इंग्लैंड-अमेरिका से तो पढ़ने आएगा नहीं.

करुण रस की प्रतिष्ठा

भवभूति में राजा राम के निर्णय से मनुष्य राम पर थोपी गई सीता-निर्वासन की वयोग-वेदना भीतर ही भीतर घनीभूत होकर भले ही मर्म को भेद दे , बाहर आकर व्यक्त नहीं हो सकती , क्यों क तब वह राजा राम को स्ख लत कर देगी. और उसी वेदना को भवभूति ने नाम दिया है साक्षात् 'करुण रस "–
अनि र्भन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथ:।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रस:॥**3:1**॥

[(गोदावरी की सहायक मुरला नदी का दूसरी सहायक तमसा से **-)**राम का करुण रस पुटपाक (औष ध को गड्ढे की आग में रखकर पकाने के लए ऊपर-नीचे से बंद और मज़बूत धातु का पात्र) की औष ध की तरह है , जहां सुदृढ़ता के कारण पुटपाक टूटता तो नहीं ले कन भीतर के ताप से औष ध को पघलाकर द्रवीभूत कर देता है , वैसे ही जैसे राम की व्यथा आवेग के ताप से मर्म को पघलाती भीतर ही भीतर उबलती-फैलती है, ले कन बाहर नहीं आ सकती.]

यह वेदना का वह द्रवीभूत प्रवाह है जो पहाड़ी सोते की तरह पत्थर तक को काट देता है पर बहता है अंतर्भूत और अदृश्य होकर ही-

करकमल वतीर्णैरम्बुनीवारशष्पै
स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मै थली यानपुष्यन्।
भवति मम वकारस्तेषु दृष्टेषु कोs प
द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेद्योग्यः॥**3:25**॥

[(बारह साल के अंतराल के बाद एक अन्य नि मत्त से दोबारा पंचवटी आए राम-**)** सीता ने अपने कमल के फूल-जैसे सुकुमार हाथों से यहाँ के जिन पेड़ों को पानी, च ड़यों को तिन्नी का दाना और हिरणों को मुलायम घास देकर पाला था, आज उन्हें पुनः देखकर मेरा हृदय पत्थर को तोड़नेवाले द्रवीभूत प्रवाह-जैसे कसी अनिर्वचनीय वकार (वेदना) से आप्यायित हो रहा है.]

पंचवटी की पुनर्यात्रा में राम बारंबार उस वेदना के उत्कट रूप से टकराते हैं-

त्वया सह निवत्स्या म वनेषु मधुगं धषु।
इतीवारमतेहासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः॥ **2:18**॥
न कञ्चिद प कुर्वाणः सौखैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य कम प द्रव्यं यो हि यस्य प्रयो जनः॥ **2:19**॥

[(राम-**)** 'आपके साथ पुष्प-पराग की गंध से भरे इन (वंध्य) वनों में रहूँगी (आपके बिना अयोध्या में नहीं)', ऐसा कहती हुई सीता इस महारण्य में रमण करती थी. जो जिसका प्रय है , वह उसके लए कुछ न करे तब भी , महज़ प्रेमभाव के (अव्यक्त) वजूद से उसके सारे दुःखों को दूर कर देता है (एक साधारण अनुभूति जो सीता- वयोग की स्थिति में सीता के कथन के साथ राम के अपने तादात्म्य को अतिशय कारु णक बना देती है).]

फर-

चरोद्वेगारंभी प्रसृत इव तीव्रो वषरसः
कुतश्चित्संवेगान्निहित इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रंन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्म ण पुनः
पुराभूतः शोको वकलयति मां नूतन इव॥ **2:26**॥

[(राम-**)** चरकाल तक निरंतर उद् वग्न रखनेवाले और पूरी तरह फैल गए तेज़ वषैले द्रव की तरह ; कहीं से बहुत तेज़ी से आकर हृदय में घुस गए वाणाग्र के टुकड़े की

तरह, और हृदय के मर्म-स्थल में हुए सं धवाले फोड़े के फूटने की तरह आज वह (सीता- वयोग का) पुराना शोक मुझे फर से बेधकर व्याकुल कर रहा है]

पंचवटी की इस दूसरी यात्रा में सीता के साथ बिताये वनवास के पुराने दिनों की याद, सीता-निर्वासन के वर्तमान वयोग का शोक, पश्चात्ताप और आत्मग्लानि बनकर राम को इस क़दर घेर लेती है क वे मूर्छित हो जाते हैं. मूर्छा के ठीक पहले का उनका संवाद है-

'यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे

यत्सम्बं धकथा भरेव सततं दीर्घा भरास्थीयत ।
एक: सम्प्रति ना शत प्रयतमस्तामेव राम: कथं,
पाप: पंचवटी वलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा॥" **(2:28)**

[जिस पंचवटी को घर-जैसा बनाकर मैंने सीता के साथ वे (वनवास के) दिन बिताए और फर जिसकी याद में परस्पर लम्बे-लम्बे वार्तालाप करते हुए (अयोध्या में) बाद के दिन बिताए, उसे अब प्रयतमा का नाश करनेवाला पापी मैं अकेला कैसे देखूं **?** और (न देखूं तो) उसका अनादर करके चला भी कैसे जाऊँ **? (** भवभूति ने यहां राम के मुख से अपने लए पापी नहीं 'पाप' शब्द का प्रयोग कराया है, जिसके सीधे-सीधे हिंदी अनुवाद से वाक्य अटपटा हो जाता है-साक्षात् पाप होना पापी से बहुत बढ़कर है).]

और अंत में दण्डकवन की नीरवता में राजा राम के कठोर न्याय के वरुद्ध मनुष्य राम की वह आर्त पुकार–

हे भगवंत: पौरजनपदा: !
न कल भवतां देव्या: स्थानं गृहे**s** भमतं तत-
स्तृण मव वने शून्ये त्यक्त्वा न चाप्यनिशो चता।
चरपरि चतास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा-
मदशरणैरद्यास्मा भ: प्रसीदत रुद्यते॥**3:32**॥

[हे महानुभाव नागरिको एवं देशवा सयो !
घर में सीता देवी का रहना आप लोगों को नहीं भाया. इस लए मैंने उसे निर्जन वन में तृण की तरह निराश्रय छोड़ दिया और इसके लए पश्चात्ताप भी नहीं कर पाया (राजा का ऐसा आचरण निंदित सीता के जन-भावना के प्रतिकूल होता). पर इस समय

(दीर्घ वनवास के कारण) चरपरि चत ये (वृक्ष, पक्षी , मृग आदि) वनवासी मुझे ऐसा व्याकुल कर रहे हैं क मैं अशरण होकर कलप रहा हूँ. अब आप लोग प्रसन्न हों.]

उत्तररामचरितम् करुण रस की अपूर्व निष्पत्ति के अतिरिक्त दो और अर्थों में व शष्ट, बल्कि अद् वतीय है. एक- गृहस्थ जीवन की ऊष्मा और वश्वास से दीप्त दाम्पत्य या स्वकीया प्रेम का पूर्ण परिपाक; और दो- बीहड़, वकराल और बीच-बीच में अति मनोरम वंध्य-स्थली (दण्डकारण्य) में प्रकृति के नाना रूपों का सूक्ष्मतम चत्र, जिसकी तुलनाके लए वश्व-साहित्य में शायद ही कोई अन्य कृति मले.

दाम्पत्य प्रेम

प्रगाढ़ स्वकीया प्रेम की प्रस्तुति के लए नाटक के शुरू में ही बहुत उपयुक्त अवसर का सृजन कया गया है. माताएँ गुरु व शष्ठ और गुरु-पत्नी अरुंधती के साथ जामाता ऋष्यशृंग के यज्ञ में गई हुई हैं. सीता के गर्भवती होने के कारण ऋष्यशृंग ने उन्हें नहीं बुलाया था और उनकी देख-भाल के लए राम की आवश्यकता के चलते उनके लए भी आग्रह नहीं कया था. और जब राम और सीता नहीं गए तो लक्ष्मण को भी रुकना ही था. ऐसे में सीता की इच्छाएँ पूरी करने और उनके साथ रहने में राम अ धक समय देते हैं. लक्ष्मण ने सीता के मनो वनोद के लए राम के पूर्व-जीवन पर एक चत्रकार से चत्रपट तैयार करवाया है जिसे वे दिखाने आते हैं. राम और सीता एक-एककर चत्र देखते जा रहे हैं और कुछ-न-कुछ टिप्पणी करते जा रहे हैं. वश्वा मत्र से जृम्भक अस्त्र प्राप्त करने के दृश्य से शुरू होकर ववाह के अवसर पर म थला के चत्रों को देखते हुए वे अयोध्या के प्रसंगों पर पहुँचते हैं. और तब:

"राम : (सास्रम्) स्मरा म हंत ! स्मरा म.
जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृ भश्चिंत्यमानानां ते हि नो दिवसा गता:॥**1:19**॥

इयम प तदा जानकी–

प्रतनु वरलै: प्रांतोन्मीलनमनोहरकुंतलै-
र्दशनकुसुमैर्मुग्धालोक शशुर्दधती मुखम्।
ल लतल लतैर्ज्योत्सनाप्रायैर्रकृत्रिम वभ्रमै-
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकै:॥**1:20**॥"

[राम : (आँसूभरी आँखों से) याद करता हूँ, ओह ! याद करता हूँ.
तब पताजी जी वत थे. नया-नया ववाह हुआ था. और माताएँ हमारी सुख-सु वधा के

लए चंतित रहती थीं. कैसे तो बीत गए वे दिन !

उस समय यह जानकी भी-

नवयौवना थी. दुबले गालोंवाला चेहरा, उस पर उसके सुंदर बिखरे हुए बाल. इससे और फूलों के समान दाँतो से वह चेहरा कतना मोहक लगता था ! अपने सुकुमार, मनोरम और चाँदनी-सदृश शुभ्र अंगों तथा उनके सहज-स्वाभा वक वलास से यह माताओं में कुतूहल उत्पन्न कया करती थी.]

चत्रपट आगे बढ़ता है. वनवास ! चत्रकूट. गोदावरी-तट. पंचवटी. सर्वथा अलग तरह का दाम्पत्य. ले कन और भी प्रगाढ़:

कम प कम पमन्दं मंदमासक्तियोगा-

द वर लतकपोल जल्पतोरक्रमेण।

अ श थलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-

र वदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥**1:27**॥

[तीव्र प्रेमासक्ति के चलते परस्पर गालों को सटाये, आहिस्ता-आहिस्ता, बिना सर-पैर की बातें करते, एक-एक बाँह को प्रगाढ़ आ लंगन में लपेटे, दोनों की रात ऐसे बीत जाती थी क उसके प्रहरों का पता ही नहीं चलता था.]

चत्रदर्शन की थकान से सीता राम के वक्षस्थल पर ही सर रखकर सो जाती हैं. उन्हें प्रेम से निहारते हुए राम–

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनो-

रसावस्या: स्पर्शो वपु ष बहुलश्चंदनरस:।

अयं बाहु: कण्ठे श शरमसृणो मौक्तिकसर:

कमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु वरह:॥**1:38**॥

[यह घर की लक्ष्मी है, आँखों के लए अमृत-शलाका है (इसे देखना जीवनदायी है), इसका स्पर्श शरीर पर चंदन का लेप है (उद् वग्नता का शमन करता है), गले में पड़ी हुई इसकी भुजा शीतल, मृदुल मुक्ताहार है (अंतस्थल को शीतलता और स्निग्धता देती है). इसकी कौन सी वस्तु है जो मुझे परम प्रय नहीं ! बस इसका वयोग असह्य है. (वयोग, जिसके सीता-हरण के समय के अनुभव से यह बात निकली है, और जो एक क्रूर वडंबना बनकर कुछ ही क्षणों में पुन: उपस्थित होनेवाला है)]

जब सीता स्वप्न में 'हे आर्यपुत्र ! आप कहाँ हैं' ऐसा कुछ बुदबुदाती हैं तो राम महसूस करते हैं क शूर्पणखा आदि का भयानक चत्र देखकर डरी सीता को स्वप्न में वयोग

की चंता सता रही होगी. इस भय से मुक्त करने के लए उन्हें छूते हुए उन्हें संतु लत दाम्पत्य जीवन के परिपक्व स्वरूप का एहसास होता है–

अद्वैतं सुखदु:खयोरनुगतं सर्वास्वस्थासु यत्
वश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस:।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारेस्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते॥**1:39**॥

[जो दाम्पत्य सुख और दु:ख में समान रहता है, सभी स्थितियों में साथ देता है, जिसमें मन को वश्राम मलता है, जिसमें निहित अनुराग वृद्धावस्था द्वारा भगाया नहीं जाता, जो समय बीतने के साथ लज्जा-संकोच आदि आवरण के हटने से परिपक्व होकर अपने प्रेमोत्कर्ष में स्थित होता है, उसका यह कल्याणकारी सारतत्व सर्वथा वरेण्य है.]

ले कन व ध का वधान ! सीता की स्वप्नावस्था का भय अकारण नहीं है. पहले से भी भयंकर वयोग बस उपस्थित ही होनेवाला है ! और भू मका बन चुकी है.

चत्र-दर्शन से ठीक पहले ऋष्यशृंग के यहां से उनका और गुरु व शष्ठ का राम और सीता के लए संदेश लेकर अष्टावक्र आए थे. उन्होंने राम को सीता का समु चत ध्यान रखने और उनका हर दोहद (गर्भ-जन्य इच्छा) पूरी करने की हिदायत दी थी. व शष्ठ ने राम को यह भी कहलवाया था क हम लोग वहाँ नहीं हैं, आप राज्य के लए अभी नये हैं, इस लए प्रजा का अनुरंजन करने में लगातार तत्पर रहें , जो रघुवं शयों की बहुमूल्य सम्पत्ति है. राम ने अष्टावक्र के माध्यम से उन्हें आश्वस्त करनेवाला संदेश भी भेजा था:

स्नेहं, दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीम प।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥**1:12**॥

[प्रजा के अनुरंजन के लए कोई भी प्रेम, कोई भी मैत्री, यहाँ तक क जानकी तक को छोड़ने में मुझे कष्ट नहीं होगा.]

और राम के इस वाक्य का समर्थन करते हुए सीता ने कहा था–

अदो जेव्व राहवकुलधुरंधरो अज्जउत्तो [(प्राकृत) इसी वशेषता के कारण तो आर्यपुत्र (पति के लए प्रयुक्त होनेवाली संज्ञा) रघुकुल के धुरंधर हैं.]

और दोनों के वचन की परीक्षा बस कुछ घ ड़याँ दूर थी. राजा राम और मनुष्य राम , राजधर्म और मनुष्य-धर्म के बीच का वह शास्वत द्वंद्व , जो भारतीय राजनीतिक चंतन और सामूहिक जीवन के आदर्श की व शष्ट देन है , जिसमें राजतंत्र निरंकुश एकतंत्र नहीं है बल्कि जनोन्मुखता एवं कुछ स्था पत मूल्यों से सी मत है–कम से कम सद्धांत और पैमाने में. यह द्वंद्व ऐसी वडंबनाओं को बार-बार जन्म देता रहा है. ऐतिहा सक चरित्र जु लयस सीजर के जीवन में भी ऐसी ही एक वडम्बना खड़ी हुई जब उसे यह कह कर अपनी पत्नी को तलाक़ देना पड़ा था क सीजर की पत्नी को संदेह से परे होना चाहए, जो एक कहावत बन गई. अस्तु, वडंबना, जो जीवन-यथार्थ का अ वच्छेद्य अंग है , के कुशल, स्वाभा वक सन्निवेश के बिना कोई भी कृति उत्कृष्ट साहित्यिक कृति नहीं बन पाती. उत्तररामचरितम् की कथा-योजना का केंद्रीय तत्व यही वडंबना है, जिसका कुशल निर्वाह भवभूति की एक बड़ी उपलब्धि लगती है.

प्रकृति-वर्णन

का लदास में भी बहुत उत्कृष्ट प्रकृति-वर्णन है और प्रभूत मात्रा में है , ले कन इस मामले में भवभूति का पटल अ धक वस्तृत और संश्लिष्ट लगता है. भवभूति की दृष्टि प्रकृति के कठोर और व्यापक यथार्थ पर गई है, जब क का लदास ने शृंगार रस के अनुरूप प्रकृति के कोमल-कांत स्वरूप को चुना है , जो मूलत: रागात्मक है और जिसका सौंदर्य अनुभव-जन्य से अ धक कल्पना-प्रसूत है. भवभूति का जन्म वंध्य क्षेत्र के वदर्भ प्रांतर (पद्मपुर नामक नगर) में हुआ था जब क अ धकांश क व-जीवन कन्नौज-नरेश यशोवर्मा(शा.का. **725-752)** के दरबार में बीता. और यशोवर्मा का राज्य वंन्ध्य-क्षेत्र तक फैला हुआ था. वंध्य की वनस्थली में स्थित दण्डकारण्य के वर्णन में उन्होंने अपूर्व ऊँचाई प्राप्त की है, जो इतनी प्रामा णक है क यथार्थ अनुभव के बिना संभव नहीं लगती. उसके दोनों तरह के भूभाग –घोर जंगल और जनस्थान जहाँ वनवासी या तपस्वी रहते थे – पूरी व वधता और सूक्ष्मता में मूर्तिमान हुए हैं. अनुवाद-सहित कुछ छंदों के उद्धरण से ही इसका आस्वाद लया जा सकता है:

कण्डूलद् वपगंण्ड पण्डकषणोत्कम्पेन सम्पाति भ-
र्घर्मस्रं सतबंधनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।
छायापस्किर्माण वष्किरमुखव्याकृष्टत्वच:
कूजत्क्लांताकपोतकुक्कुटकुला: कूली कुलायद्रुमा:॥**2:9**॥

[गोदावरी-तट. वृक्षों का झुरमुट. उनकी शाखाओं से लटकते प क्षयों के घोंसले. तनों की छाल में भक्ष्य पदार्थ ढूँढते, उनपर चोंच चलाते प क्षयों द्वारा कीड़े निकाले जा रहे हैं. वृक्षों पर तेज़ धूप से त्रस्त कबूतरों और बनमुर्गों का झुंड कलरव कर रहा है. हा थयों के खुजलाते कपोलभाग को पेड़ों से रगड़ने के कारण , धूप से श थल पड़े डंठलोंवाले उनके गरते हुए फूल मानों गोदावरी की पूजा कर रहे हैं (भावानुवाद , क्यों क एक ही वशेष्य और बाक़ी पद वशेषण या वशेषण के वशेषण होने , और उनसे बना एक ही वाक्य होने से हिंदी-अनुवाद दुरूह हो जाता है).]
स्निग्धश्यामा: क्व चदपरतो भीषणाभोगरूक्षा:

स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतै निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रम गरिसरिद्गर्त कांतार मश्रा:।
संदृश्यन्ते परि चतभुवो दण्डकारण्यभागा:॥**2:14**॥

[दण्डकारण्य के ये प्रदेश कहीं स्निग्ध और श्यामल (सघन हरीतिमा का प्रकृत रंग) , कहीं भीषण वस्तार के साथ रूखे , कहीं झरनों के झंकार की झाम्-झाम् से मुखरित दिशाओं वाले, तो कहीं तीर्थ, आश्रम, पहाड़, नदी, गड्ढे और उनके बीच से जाते दुर्गम मार्गवाले हैं, ले कन सब (पूर्व निवास के कारण राम को) परि चत भू मवाले दिख रहे हैं (बारह साल में वनस्पतियों का रूप-परिवर्तन हुआ है, कंतु ज़मीन तो वही है).]

निष्कूजस्ति मता: क्व चत्क्व चद प प्रोच्चण्डसत्वस्वना:
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय:।
सीमान: प्रदरोदरेषु वरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भि: प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रव: पीयते॥**2:16**॥

[वन के सीमान्त क्षेत्रों में कहीं तो नि:शब्द निस्तब्धता छाई हुई है , कहीं जानवरों के भयंकर शब्द हो रहे हैं, कहीं मनमर्ज़ी सोए पड़े वशालकाय साँपों की सांस से आग-सी जल रही है , तो कहीं गर गट गड्ढों में पानी की अतिशय न्यूनता से अजगरों के पसीने का पानी चाट रहे हैं.]

इह समदशकुन्ताक्रांतवानीरवीरुत्-
प्रसवसुर भशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥

[यहाँ जंगल के बीच से बहनेवाली नदियों का पानी शीतल और साफ़ , और बेत की लताओं पर फूलनेवाले फूलों से सुगं धत है , जिसमें फलों के एक साथ पक जाने से काले-काले दिखते जामुन-वृक्षों के झुरमुट से टकराकर आवाज़ करनेवाले सोते आकर मलते हैं.]

दधति कहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुर सतगुरू ण स्त्यानमम्बूकृतानि।
श शरकटुकषायः स्त्यायते शल्लकीना-
मभ लत वकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगंधः॥**2:21**॥

[यहाँ गुफाओं में रहनेवाले युवा रीछों के थूकने के शब्द प्रतिध्वनित होकर चारों ओर फैलकर बढ़ रहे हैं. (हाथी के लए खाद्य) शल्लकी लताओं के हा थयों द्वारा कुचले और इधर-उधर फेंके जाने से उनके शीतल, तीखे और कसैले रस की गंध फैल रही है.]

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौ शकघटाघुत्कारवत्कीचक-
स्ताम्बाडम्बरमूकामौकुकु लकुलः क्रौञ्चा भधोऽयं गरिः।
एतस्मिन्प्रचला कनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः॥**2:29**॥

[क्रौंच नामका पर्वत. उस पर लता आदि से घिरे कुटीर. उनमें रहनेवाले उल्लुओं की घू-घू की आवाज़. वह आवाज़ कीचक बाँस (बाँस की वह जाति जो हवा के सम्पर्क में आने से कर्र-कर्र की ध्वनि करता है) की ऊँची आवाज से मल गई है. उस मली-जुली आवाज़ से डरकर कौवे चुपचाप बैठे हैं. एक और आवाज़ - इधर-उधर घूमते मोरों की

केका, जिससे घबड़ाकर पुराने चंदनवृक्षों के तनों पर लपटे साँप इधर-उधर रेंगने लगे हैं (भावानुवाद).]

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौ लनील शखरा: क्षोणीभृतो दा क्षणा:।
अन्योन्यप्रतिघातसंङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयस: पुण्या: सरित्सङ्गमा:॥**2:30**॥

[ये द क्षण दिशा के वे पर्वत हैं जिनकी गुफाओं में गोदावरी का जल (ऊपर से नीचे के पत्थरों पर) गद्गद (कल-कल नहीं) की ध्वनि करता हुआ गर रहा है. जिनकी चोटियों के शखर पर ठहरे बादलों से वे श्याम रंग की दिख रही हैं. और ये अगाध जल-वाली नदियों के संगम हैं, जो परस्पर टकराकर अत्यंत चंचलता से उठती बड़ी-बड़ी लहरों के शोर से डरावने लगते हैं.]

पर्यावरण वद् मानते हैं क प्रकृति का सान्निद्ध्य मनुष्य को सुकून देता है और उसे अमूमन सरल, शांति प्रय, सहनशील और उदारचेता बनाता है. ऐसे चत्रोपम और ध्वन्यात्मक प्रकृति-वर्णन को पढ़ना-गुनना भी तो कुछ वैसा ही असर देता होगा. (ले कन फ़ुरसत कसे है !).

यह भवभूति के उत्तररामचरितम् की कुछ बानगी है जो उपरोक्त कथन – 'उत्तरे रामचरिते भवभूति र्व शष्यते'- में कतना सच है, यह निश्चय करने में सहायक हो सकती है. का लदास और भवभूति एक ही भाषा और एक ही परंपरा के क व हैं, ले कन कथ्य, शल्प और मज़ाज में कतना फ़र्क ! यह वही भवभूति हैं जिन्होंने अखंड आत्म वश्वास से कहा था –'उत्पत्स्यते हि मम को **s** प समनधर्मा कालो**s**ह्ययंनिरव ध वपुला च पृथ्वी ' (मेरे कए को समझनेवाला कोई तो समानधर्मा पैदा होगा, क्यों क काल निस्सीम है और पृथ्वी भी बहुत बड़ी है). तो जब का लदास का प्रसंग आए तो भवभूति को याद करना न भूलें; हो सकता है आप भी उनके समानधर्मा निकलें.

सन्दर्भग्रन्थ

-उत्तररामचरितम्[४७३]

-द्रष्टव्य०उत्तर-,३।३३/

-का४ उल्लास.प्र.,पृ आचार्य वश्वेश्वर टिका ज्ञानमण्डल काशी ११५.-संस्करण

-उ०रा० ३३८/

-सस्वनरुदितैर्मोहागमैश्च परिदे वतै र्वल पतैश्च । अ भनेय करुणरसो देहायासा भघातेश्च : (६२।६ नाट्यशास्त्र) ॥

-उत्तररामचरितम्

-नाट्यदर्पण

- रस वमर्श -